हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें

सफर अभी अधूरा है

सुधीर सिंह

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ) 2005 ने शैक्षिक विमर्श को एक नई दिशा प्रदान की है। एनसीएफ 2005 ने मौजूदा शिक्षा प्रणाली की समस्याओं के विकल्प के तौर पर शिक्षार्थियों के समझकर सीखने, स्वयं अपने अनुभवों से ज्ञान निर्माण करने, बाल केन्द्रित शिक्षण विधियों के उपयोग, विषय की प्रकृति एवं पाठ्यपुस्तकों के स्वरूप आदि पर नए सिरे से प्रकाश डालते हुए मुख्यधारा शिक्षा को पुनर्भाषित करने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) ने इस पाठ्यचर्या के सिद्धान्तों के अनुरूप बेहतर पाठ्यपुस्तकों का एक उदाहरण भी पेश किया है। एनसीएफ 2005 के निर्माण के आठ साल बाद राजस्थान में कुछ विषयों की पाठ्यपुस्तकें अस्तित्व में आई हैं। इनमें हिन्दी विषय की कक्षा 1, 3 और 5 की पाठ्यपुस्तकें भी हैं। इस समीक्षा में हम राजस्थान की हिन्दी की नई पाठ्यपुस्तकों पर चर्चा करेंगे।

सबसे पहले यह कहना जरूरी है कि हिन्दी की इन पाठ्यपुस्तकों की साज-सज्जा, आकार-प्रकार, चित्र, आवरण, इबारत का आकार और अभ्यास आदि पहले की पाठ्यपुस्तकों की अपेक्षा बेहतर हैं। नई पाठ्यपुस्तकों में पहले की बदरंग एवं रसविहीन तथा दो रंगों में छपी उबाऊ पाठ्यपुस्तकों को बहुरंगी तथा रोचक बनाने की कोशिश नजर आती है। कहा जा सकता है कि संभवतः यह पाठ्यपुस्तकें पहले की अपेक्षा बच्चों को अपनी तरफ अधिक आकर्षित करेंगी। हालांकि इसके कहने का आशय यह भी नहीं है कि प्रकाशन एवं मुद्रण के मानकों पर पूरी तरह खरी उतरती हैं। इसके बावजूद इन किताबों को देखने पर यह महसूस होता है कि एनसीईआरटी द्वारा निर्मित पाठ्यपुस्तकों की तुलना में यह पाठ्यपुस्तकें अभी भी बहुत पीछे हैं। चाहे फिर बात किताबों के कागज, छपाई और रचनाओं की गुणवत्ता की हो या पाठ्यपुस्तक निर्माताओं की कल्पनाशीलता की हो। पाठ्यपुस्तक निर्माण की लम्बी कवायद के बाद भी यह पाठ्यपुस्तकें बेहतर पाठ्यपुस्तक होने के मानदण्ड़ों से काफी दूर नजर आती हैं। हिन्दी की इन पाठ्यपुस्तकों की इस समीक्षा में हम यह जांचने का प्रयास करेंगे कि पाठ्यपुस्तकों के आमुख में स्वयं पाठ्यपुस्तक निर्माताओं द्वारा किए गए दावों पर यह पाठ्यपुस्तकें कितना खरी उतरती हैं?

लेखक परिचय

लगभग डेढ़ दशक से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य और वर्तमान में दिगन्तर, जयपुर में बतौर एसोशिएट फैलो कार्यरत हैं।

तीनों नई पाठ्यपुस्तकों के समान आमुख में कहा गया है कि, ''सीखने की प्रक्रिया में बच्चों की भागीदारी होनी चाहिए। उन्हें स्वयं करके देखने, समझ बनाने, गलती करने तथा अपनी गलतियों को स्वयं ठीक करने के समुचित अवसर मिलने चाहिएं। ...बच्चों के स्वभाव, उनकी रुचियों और आस-पास के परिवेश को ध्यान में रखते हुए विषय सामग्री और गतिविधियां तैयार की गईं। सीखने में बच्चों का अपना सामाजिक संदर्भ और उनकी अपनी भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसीलिए इस पाठ्यपुस्तक में बच्चों की विविध सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों और भाषायी विविधता (बहुभाषिकता) को उनके सीखने का मजबूत आधार माना गया है। पाठ्यपुस्तक में राजस्थान और भारत की विविधता भरी संस्कृति, हमारे संवैधानिक मूल्यों के साथ ही जेण्डर, धर्म, जाति, भाषायी विविधता, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति संवेदनशीलता रखते हुए समावेशी शिक्षा के विचार को समाहित करने का प्रयास किया गया। ...शिक्षकों के लिए ऐसे कई सुझाव हैं, जिनकी सहायता से वे कक्षा के बाहर के परिवेश में उपलब्ध संसाधनों को आधार बनाकर बच्चों को सीखने के बेहतर अवसर दे सकेंगे।'' (आमुख, रुनझुन, कक्षा 1)

आमुख में कही गई बातों के संदर्भ में इन पाठ्यपुस्तकों को समझने एवं विश्लेषण के लिए निम्न सवाल हैं:

1. क्या यह पाठ्यपुस्तकें सीखने की प्रक्रिया में बच्चों की भागीदारी को सुनिश्चित करती हैं? क्या उन्हें स्वयं करके देखने, समझ बनाने और अपनी गलतियों को स्वयं ठीक करने के समुचित अवसर देती हैं?
2. यह पाठ्यपुस्तकें भाषा सीखने में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता (बहुभाषिक संदर्भ) का इस्तेमाल किस तरह करती हैं और मातृभाषा का हिन्दी के साथ कैसे रिश्ता स्थापित करती हैं?
3. भारत एवं राजस्थान की विविधता भरी संस्कृति से बच्चों का कितना परिचय कराती हैं?
4. पाठ्यपुस्तकें संवैधानिक मूल्यों तथा जेण्डर, धर्म, जाति एवं क्षेत्र के प्रति किस तरह के सरोकार व्यक्त करती हैं?
6. क्या यह पाठ्यपुस्तकें बच्चों को अपनी मान्यताओं को जांचने और उन पर सवाल उठाने अर्थात् आलोचनात्मक चिन्तन के अवसर मुहैया करवाती हैं?

पाठ्यपुस्तकों की संरचना

पाठ्यपुस्तकों पर आलोचनात्मक चर्चा करने से पहले एक बार इनकी संरचना को देखते हैं। कक्षा 1, 3 एवं 5 की पाठ्यपुस्तकों में दो तरह से रचनाएं दी गई है; (i) 'मुख्य पाठ' जिस पर अभ्यास कार्य किया जाना है और (ii) 'सिर्फ पढ़ने के लिए' रचनाएं जिन्हें दो से तीन 'मुख्य पाठों' के बाद स्थान दिया गया है। इन पाठ्यपुस्तकों में 48 मुख्य पाठ हैं जिसमें से कक्षा एक में 17, तीन में 16 और पांच में 15 पाठ हैं। मुख्य पाठों में बहुलता कविता (18) और कहानी (19) की है और इसमें जीवनी (3), नाटक (1), लोकनाटक (2) और विवरण (5) हैं। पाठ्यपुस्तकों में 21 रचनाएं 'सिर्फ पढ़ने के लिए' हैं जिसमें लोकगीत (2), कहानी (4), कविता (1), पत्र (2), लघुचित्रकथा (3) और एकाध दृश्यचित्र, चुटकुले, सूचनाएं इत्यादि हैं। अध्यायों का ढांचा एकरूपता लिए हुए है जिसमें इबारत के बीच-बीच में चित्र दिए गए हैं। पाठ समाप्ति पर 'संकलित अभ्यास' में तयशुदा पैटर्न दिखाई देता है जिसमें 'नए शब्द' शीर्षक से शब्दार्थ, उसके बाद 'समझ का सार', 'पहले बातचीत करो फिर उत्तर लिखो', 'कहानी से', और अंत में 'भाषा की बात' शीर्षक से व्याकरण है। पाठ के अंतिम हिस्से में 'गतिविधि' के नाम पर 'मेरा संकलन' में कहानी/कविता/जीवनी आदि संकलित करने के निर्देश हैं। कुछ जगह अभिनय, सवाल पर चर्चा और चित्र देखकर वाक्य लिखने के निर्देश भी दिए गए हैं। तीनों पाठ्यपुस्तकों में कवर के अंदरूनी पेज समान हैं जिसमें एक पेज पर 'सांप सीढ़ी का खेल' और दूसरे पेज पर 'आपके विकलांग सहपाठी' शीर्षक से कुछ जानकारियां हैं। पाठ्यपुस्तक की संरचना के हिसाब से यह पाठ्यपुस्तकें प्रगतिशील सोच पर आधारित और विभिन्न तरह की गतिविधियों के अवसर मुहैया करवाती दिखाई देती हैं। हालांकि यह गतिविधियां बच्चों को वास्तव में कितना सहभागी बना पाती हैं, यह आगे विश्लेषण का विषय होगा।

भाषायी एकरूपता यानी बहुभाषिकता का कोरा सिद्धान्त

पिछले सालों में बहुभाषिकता शैक्षिक विमर्श का महत्त्वपूर्ण बिन्दु बनकर उभरा है। यदि बच्ची[1] की मातृभाषा और स्कूल की भाषा में एक रिश्ता बनता है तो वह उसके भाषा, चिंतन एवं अस्मिता को पोषित करेगा। विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि मातृभाषा और स्कूल की भाषा में संबंध नहीं बना पाने के कारण अनेक बच्चे स्कूल से पलायन कर जाते हैं। झिंगरन (2005) के अनुसार, ''12 प्रतिशत से अधिक बच्चे सीखने में इसलिए भारी कठिनाई झेलते हैं क्योंकि उन्हें प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा के माध्यम से नहीं दी जाती।'' पाठ्यपुस्तक के आमुख में बहुभाषिकता यानी भाषाई विविधता को महत्त्वपूर्ण संसाधन माना गया है। पाठ्यपुस्तक के संदर्भ में यह विचारणीय प्रश्न है कि बहुभाषिकता के सिद्धान्त के क्या निहितार्थ हैं? पाठ्यपुस्तक निर्माता इस विषय पर भ्रमित नजर आते हैं। तीनों पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय भाषा में 'गवरी का खेल' (कक्षा 5) को 'मुख्य रचना' के तौर पर शामिल किया है और 'केवल पढ़ने के लिए' रचनाओं में 'गोरबंद', 'नानक जी भील' (कक्षा 5), 'चिरमी' (कक्षा 3) शामिल की गई हैं। पाठ्यपुस्तक निर्माता इन रचनाओं को शामिल करने मात्र से ही बहुभाषिकता के सिद्धान्त की इतिश्री मान लेते हैं। यह पाठ्यपुस्तकें बच्चे की मातृभाषा और हिन्दी के बीच सेतु निर्मित करती हुई नहीं दिखतीं। शिक्षकों के निर्देशों में भी कहीं मातृभाषा और हिन्दी के बीच सेतु बनाने के निर्देश नहीं हैं। जबकि ऐसे अभ्यास सृजित करने की भरपूर संभावना हो सकती है जिसमें बच्चों को उनकी मातृभाषा में कार्य करने के अवसर दिए जा सकते थे। पाठ्यपुस्तक में स्थानीय भाषा के चुनिंदा उदाहरण हैं परन्तु उनमें भी बहुलता उदयपुर के आस-पास की भाषा की ही है जहां यह किताबें लिखी गई हैं।

पाठ्यपुस्तक में लिखा तो गया है कि, ''बहुभाषिकता एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है ...स्थानीय बोली के शब्दों को हिन्दी भाषा के शब्दों में समझने की सामग्री उपलब्ध कराई गई है।'' (कक्षा 5, पेज iv)। परन्तु यह समझ से परे है कि क्या मेवाड़ी को ही समस्त राजस्थान के लिए स्थानीय भाषा का पर्याय मान लिया गया है। ऐसा लगता है कि यह पाठ्यपुस्तकें भाषायी एकरूपता को ही आगे बढ़ा रही हैं।

ज्ञान निर्माण और बच्चों की सहभागिता

हम सब जानते हैं कि बच्ची स्कूल आने से पहले मातृभाषा का अच्छे से उपयोग करती है। इसलिए स्कूल में बच्ची की भाषायी क्षमताओं का विकास विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से होना चाहिए, ऐसी गतिविधियां होनी चाहिएं जो मातृभाषा एवं स्कूली भाषा में तालमेल बैठा सकें। कक्षा 1 की पाठ्यपुस्तक के आरंभ में मौखिक गतिविधियों के लिए जगह बनाई गई है। कुछ दृश्य ('मेरा गांव', 'खमनोर बस स्टेंड', 'मेले की मौज') और चित्र कहानी (बिल्ली और चूहा) तथा अंगूठे की छाप एवं करीब 10 कविताएं दी गई हैं। अपेक्षा है कि शिक्षक इन पर चर्चा करे, कहानी बनवाए और कविताएं गाए और गवाए। राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों में यह पहली बार ही हुआ है। अतः अभी तक सिर्फ लिखित भाषा पर फोकस करने वाली आरंभिक पाठ्यपुस्तक में मौखिक भाषा पर भी ध्यान दिया गया है। निश्चित ही यह स्वागत योग्य कदम है। 'वातावरण निर्माण' के साथ-साथ यह गतिविधियां बच्चों के भाषायी कौशलों को भी निखारेंगी। लेकिन इस पाठ्यपुस्तक में आरंभ में ही इन्हें स्थान देकर यह मान लिया गया है कि यह मात्र वातावरण निर्माण की गतिविधि हैं। इन पाठ्यपुस्तकों में आगे मौखिक कार्यों के लिए स्थान नहीं दिया गया है और है भी तो नगण्य। जबकि हम जानते हैं कि इंसान अपनी मौखिक अभिव्यक्ति में भी उच्चतर स्तरों की ओर बढ़ता है। आगे की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे मुद्दे चर्चा के लिए रखे जा सकते थे जो कि उन्हें क्रमशः अधिक जटिल मुद्दों पर विचार या चर्चा के अवसर उपलब्ध करवाते।

1. आलेख में बच्ची शब्द का उपयोग लिंग निरपेक्ष समझें।

भाषायी कौशलों के विकास में अभिनय करना, कक्षा एवं कक्षा के बाहर के अनुभवों पर चर्चा करना, चित्र बनाना एवं उस पर बातचीत करना, अपनी भाषा में स्वयं को व्यक्त करना आदि महत्त्वपूर्ण गतिविधियां हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से बच्ची न केवल भाषायी संसार में रच-बस सकेगी अपितु उसकी अस्मिता एवं ज्ञान निर्माण में इन गतिविधियों की महति भूमिका हो सकती है। पाठ्यपुस्तक के आमुख में इसकी स्वीकारोक्ति है, परन्तु पाठ्यपुस्तक इसे आकार नहीं दे पाई है। भाषायी कौशलों के विकास के लिए अभिनय एक महत्त्वपूर्ण विधा है जो बच्ची को अलग-अलग परिस्थितियों में अभिव्यक्ति के मौके देती है। जब बच्ची अभिनय कर रही होती है तो उस दौरान वह न केवल उन परिस्थितियों की कल्पना करती है अपितु दूसरों के नजरिए से घटना को भी समझ रही होती है, अनुमान लगाती है और विभिन्न घटनाओं की तस्वीर अपने मन में गढ़ती है। परन्तु इस महत्त्वपूर्ण गतिविधि को तीनों ही पाठ्यपुस्तकों में बहुत कम स्थान मिला है। कक्षा 3 और 5 में एक गतिविधि अभिनय के लिए दी गई है। अभिनय के लिए, 'सब्जी बेचने-खरीदने वाला, डॉक्टर-मरीज, मां-बेटा, अध्यापिका-छात्र' (कक्षा 3, पृ. 107), 'हंसना, सूंघना, चखना' (वही, पृ. 121) और जानवरों के मुखौटे लगाकर अभिनय (कक्षा 5, पृ. 13) गतिविधियां दी गई हैं। कक्षा 5 के शिक्षार्थियों के लिए कहानी पर अभिनय करना या लोककथाओं आदि पर अभिनय करना कक्षा में उनकी रुचि को बढ़ाने के साथ-साथ समझ का दायरा भी बढ़ाता। इसके साथ ही स्थानीय भाषा को स्कूल के वातावरण का हिस्सा बनाने का अवसर भी मिलता।

पाठ्यपुस्तक में गतिविधि के नाम पर कक्षा 3 से 'मेरा संकलन' की शुरुआत होती है। कक्षा 3 में संकलन की तीन गतिविधियां हैं जिसमें दर्शनीय स्थलों और पक्षियों आदि के चित्रों का संकलन करना है। कक्षा 5 में मेरा संकलन में 14 गतिविधियां हैं जिनमें पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकालय आदि से चित्र/गीत/चुटकुले/कहानी आदि एकत्र कर उन्हें चिपकाना है। पाठ्यपुस्तक निर्माता इससे अधिक कल्पनाशील नहीं हो पाए हैं जबकि वे यह जानते हैं कि आमतौर पर देहाती परिवेश में बच्चों के आसपास और यहां तक कि पुस्तकालय में भी पाठ्यपुस्तकों से इतर मुद्रित सामग्री नहीं होती। ऐसे अभ्यास भी पाठ्यपुस्तक में दिए हैं कि, 'गवरी के खेल को प्रत्यक्ष देखकर जानने-समझने का प्रयास करें।' (वही, पृ. 36) यह एक स्थानीय खेल है। राजस्थान के बहुतायत बच्चों के संदर्भ में इसका क्या औचित्य है? इसे सार्थक बनाने का तरीका यह हो सकता था कि बच्चों को अपने स्थानीय खेलों को एकत्रित करने से संबंधित सवाल होता। कक्षा 1 और 3 में अधिकांश गतिविधियां ऐसी हैं जिसमें स्कैच में रंग भरना या फिर चित्र बनाना है। यहां भी पाठ्यपुस्तक निर्माताओं में बच्चों की रचनात्मकता को उभारने के लिए कल्पनाशीलता का अभाव ही नजर आता है।

इन पाठ्यपुस्तकों में बच्चियों के लिए चर्चा के अवसर तो हैं परन्तु यह बहुत ही सतही हैं। कक्षा 3 में छह पाठों में और कक्षा 5 में चार पाठों में आपसी चर्चा के लिए एक-एक सवाल दिया गया है। यह सवाल सही मायने में बच्चों को अपने स्तर पर सोचने के अवसर के बजाय पाठ्यपुस्तक निर्माताओं द्वारा मतारोपण का प्रयास दिखाई देता है। अर्थात् उनमें पहले से ही एक मूल्यबोध शामिल कर लिया गया है। उदाहरण के लिए, 'सर्कस में जानवरों के करतब दिखाए जाते हैं। उनके प्रति क्रूरता बरती जाती है। क्या ऐसे सर्कस को मनोरंजन का साधन माना जाता है? सर्कस को स्वस्थ मनोरंजन बनाने के लिए क्या-क्या कदम उठाए जाने चाहिएं?' (कक्षा 5, पृ. 49), 'चर्चा करो कि हमें यह काम क्यों करने चाहिएं - नियमित रूप से भोजन से पूर्व व शौच के बाद हाथ धोना।' (कक्षा 3, पृ. 98) निश्चित ही इन विषयों पर चर्चा होनी चाहिए लेकिन इन सवालों में एक किस्म का मूल्यबोध पाठ्यपुस्तक निर्माता पहले से ही उपलब्ध करवा रहे हैं। यानी, दोनों सवाल पहले से किसी मान्यता से प्रेरित हैं और इनका एक निश्चित जवाब आने की अधिक संभावना है। चर्चा के लिए ऐसे मुद्दे नहीं हैं जो बच्ची को विभिन्नों मतों को जांचने या नई कल्पनाएं करने के लिए प्रेरित करें और ऐसे मौके भी नहीं हैं जिसमें बच्ची स्कूल के बाहर के अपने अनुभवों को साझा कर सके, अपने सपनों को कक्षा का हिस्सा बनाते हुए उच्च स्तरीय भाषायी कौशलों के विकास की तरफ बढ़ सके।

रचनात्मक लेखन

रचनात्मक लेखन स्कूली शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण भाषायी उद्देश्य है। यदि बच्ची को उसकी अपनी भाषा में व्यक्त करने के अवसर दिए जाते हैं तो इससे न केवल उसकी रचनाशीलता बढ़ेगी अपितु भावानात्मक स्तर पर स्कूल से अधिक जुड़ाव भी होगा। एनसीएफ 2005 इस बारे में कहता है कि, ''साहित्य भी बच्चों की रचनाशीलता को बढ़ा सकता है। कोई कहानी, कविता या गीत सुनकर बच्चे भी कुछ लिखने की दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं। उनको इसके लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अलग-अलग रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यमों को आपस में मिलाएं। (एनसीएफ 2005, अध्याय 3, पृ. 43) तीनों पाठ्यपुस्तकों में ऐसा कोई अवसर नहीं है जिसमें बच्ची स्थानीय भाषा में किसी गीत/कविता/कहानी/नाटक/ लोकगीत/लोककथा आदि को अपनी भाषा में पुनर्सृजित कर सकें। रचनात्मक लेखन के नाम पर तीनों ही कक्षाओं में वाक्यों के लिखने पर जोर है। कक्षा एक में पाठ 13, 16, 17 में वाक्य बनाने का अवसर दिया गया है। इसमें 'सतपाल चला' जैसे वाक्य बनाने की अपेक्षा बच्ची से की गई है जो यांत्रिक लेखन की तरफ ही जाता है। कक्षा तीन में 16 में से कुल 6 पाठों में और कक्षा पांच में 15 में से 9 पाठों में रचनात्मक लेखन के नाम पांच या दस वाक्य लिखने के निर्देश दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा 5 के पृ. 37 पर एक चित्र दिया गया है जिसमें पेड़ की जिस टहनी पर व्यक्ति बैठा है उसी टहनी को काट रहा है। इस प्रचलित कहानी पर बच्ची को पांच वाक्य लिखने हैं। किसी भी चित्र पर पांच वाक्य लिखना अलग बात है और एक सार्थक संदर्भ में अनुच्छेद लिखना एकदम अलग बात है। भाषा सार्थक संदर्भ की रचना से विकसित होती है। अन्यथा स्कूलों में बच्चों से गाय पर निबंध लिखवाने की कवायद खूब करवाई जाती है जो कि कभी भी सार्थक अनुच्छेद की रचना को संभव नहीं बना पाता है। ध्यान देने की बात यह है कि पाठ्यपुस्तक वाक्य लेखन को महत्त्वपूर्ण मानती है। पाठ्यपुस्तक के आमुख में कहा गया है कि बच्चे भाषा को समग्रता में सीखते हैं। क्या इस तरह के अभ्यास बच्ची की लेखन में रुचि जागृत कर पाएगा और क्या यह स्वतंत्र एवं रचनात्मक लेखन की तरफ प्रवृत्त कर पाएगा?

रटने के मोह का द्वंद्व

पूर्वाग्रहों के बारे में सोचने, किसी मत का विश्लेषण करने, अलग-अलग परिस्थितियों में आई समस्याओं के हल खोजने में पाठ के अभ्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यदि पाठ्यपुस्तक का कोई पाठ किसी विशेष आग्रह से प्रेरित है तो उस पर भी अभ्यास के सवालों के माध्यम से चिन्तन का अवसर उपलब्ध कराया जा सकता है। पाठ्यपुस्तक में दिए गए अभ्यास का विश्लेषण करने से पहले इस तालिका को देखते हैं :

कक्षा	कुल सवाल	सूचना	विवरण	समीक्षा	कल्पना
1	27	22	0	1	4
3	149	74	26	21	19
5	185	91	63	17	13
कुल सवाल	**361**	**187**	**89**	**39**	**36**

आप देख सकते हैं कि इन सवालों में बहुलता सूचनात्मक सवालों की है जो लगभग 52 प्रतिशत है। सूचनात्मक सवालों में इस तरह के सवाल हैं, 'जब खेतों में बाजरा उगता है, उस समय खेतों में और क्या-क्या उगता है? पूछकर लिखो।' (कक्षा 1, पृ. 87)। दूसरे इस तरह के सवाल हैं कि 'किसने किससे कहा' अथवा 'सही गलत' जैसे सवाल भी इसी श्रेणी में हैं। संभवतः पाठ्यपुस्तक निर्माता अपनी शिक्षा के अनुकूलन से मुक्त नहीं हो पाए हैं। इन सवालों से किन क्षमताओं के विकास की उम्मीद की जा सकती है? आप तालिका में देख सकते हैं कि लगभग 26 प्रतिशत सवाल विवरणात्मक हैं जिसमें पाठ के आधार पर या अनुभव के आधार पर चीजों के बारे में विवरण देना है जैसे,

'दीदी ने पलक को क्या सलाह दी?' (कक्षा 3, पृ. 72), 'शानी का इंतजार लेखक कैसे कर रहा था?' (कक्षा 5, पृ. 100) लगभग 11 प्रतिशत सवाल ही ऐसे हैं जो विश्लेषण या कल्पना की मांग करते हैं। जैसे, 'चांद पर हलीम को खूब सारे गड्ढे दिखे और बड़े-बड़े पहाड़ भी। बताओ चांद पर और क्या-क्या होगा?' (कक्षा 1, पृ. 100), मंत्री ने पहेली का अर्थ जानने के लिए किसान को सिक्के दिखाए। ऐसी स्थिति में अगर आप किसान की जगह होते तो क्या करते?' (कक्षा 5, पृ. 93) पाठ्यपुस्तकों में बच्ची के लिए अलग-अलग परिस्थितियों या घटनाओं का विश्लेषण करने और कल्पना की उड़ान भरने के मौके सीमित हैं। ऐसे सवाल पूछने के अवसर लगभग गायब है जिसमें बच्ची स्कूल में सिखाई जा रही चीजों का रिश्ता स्कूल से बाहर की दुनिया से जोड़ सके। बच्ची को अपने अनुभव को बताने के लिए उत्साहित करने वाले सवाल लगभग गायब हैं।

भाषायी कुशलता बनाम व्याकरण

पाठ्यपुस्तक निर्माताओं का खासा जोर व्याकरण सिखाने पर है। कक्षा 3 से प्रत्येक पाठ में व्याकरण को भी शामिल किया गया है और इसे पाठ के साथ मिलाकर सिखाने की अच्छी शुरुआत हुई है। परन्तु यह बहुत आगे तक नहीं जा सकी है। कक्षा 3 में संज्ञा सिखाने से इसकी शुरुआत हुई है। इसमें संज्ञा शब्दों को छंटवाने से कार्य आरंभ किया गया है जो कि सहज ही है। लेकिन पाठ्यपुस्तक में व्यक्ति, रिश्ते, वस्तुओं या शहरों के नाम छांटने तक तो काम ठीक चलता है। लेकिन भाववाचक संज्ञा पर आते ही पाठ्यपुस्तक निर्माता एक परिभाषा थमा देते हैं, ''तुम्हारे चारों तरफ जो भी वस्तुएं विद्यमान हैं उन सबका एक नाम होता है। नाम शब्द 'संज्ञा शब्द' कहलाते हैं। किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, भाव आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं।'' (कक्षा 5, पृ. 42) भाव जो संज्ञा का एक रूप है उसे परिभाषा के माध्यम से बता दिया गया है। इससे पहले किसी भी पाठ में भाववाचक संज्ञा को समझाने के लिए कोई काम नहीं हुआ है। इसके विपरीत एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक भाववाचक संज्ञा पर भी अच्छे तरीके से काम करती है। व्याकरण की अन्य अवधारणाओं में भी ऐसी ही समस्याएं हैं। जैसे समानार्थी, पर्यायवाची, पर्याय और अनेकार्थी की अवधारणाओं में यह समझ ही नहीं आता कि यह एक ही अवधारणा के अलग-अलग नाम हैं या यह अलग-अलग अवधारणाएं हैं। इन पाठ्यपुस्तकों में व्याकरण के नाम पर संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया विशेषण, लिंग, वचन, मुहावरे, उपसर्ग, कारक, अनेकार्थी, पर्यायवाची, विपरीतार्थक, जुड़वां शब्द, लोकोक्ति और विराम चिन्ह आदि को सिखाने का हिस्सा बनाया है, जिसकी शुरुआत अलग तरह से करने की कोशिश हुई है परन्तु जल्द ही यह अपने परंपरागत दबाव का शिकार हो गई है। अब यह समझ में नहीं आता कि व्याकरण में इतनी सारी चीजें प्राथमिक स्तर पर सिखाने की क्या आवश्यकता थी जबकि एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों में प्राथमिक स्तर पर व्याकरण की अवधारणाओं को समझने का मौका दिया गया है बजाय परिभाषा के।

पाठ्यपुस्तक में 'नए शब्दों' के नाम से कठिन शब्दों के अर्थ भी समझाए गए हैं परन्तु जो अर्थ बताए गए हैं वे भी बच्ची के लिए उतने ही मुश्किल हैं जितने की पहले प्रयुक्त शब्द थे। जैसे, राग=अनुराग, प्रेम; न्यौता=निमंत्रण; राज=रहस्य, भेद; साइंस=विज्ञान, ऊर्जा=शक्ति, शहादत=बलिदान, त्याग, कुर्बानी; गवाही=साक्षी आदि ऐसे शब्दों की आप एक लंबी सूची तैयार कर सकते हैं जिसमें बताया गया अर्थ मूल शब्द जितना ही मुश्किल है। तो ऐसी शब्दार्थ का बच्ची के लिए क्या औचित्य है? ऐसा लगता है कि पाठ्यपुस्तकें रटने के मोह का त्याग तो करना चाहती हैं पर यह संभव नहीं हो पाया है।

भाषा में पत्र लेखन एक जरूरी विधा है जिसे कक्षा पांच की पाठ्यपुस्तक में स्थान दिया गया है। पहला पत्र दादा ने अपनी पोती को लिखा है और लगभग एक साल बाद पोती अपने दादा के पत्र का जवाब लिखती है। (कक्षा 5, पृ. 73 एवं 86) पत्र की शैली और भाषा बनावटीपन लिए हुए है। यह पत्र लेखन सिखाने का परंपरागत तरीका है जिसमें बच्चे 'सादर चरण स्पर्श' के परंपरागत मूल्यबोध के साथ 'मैं यहां कुशलपूर्वक हूं' से आगे नहीं बढ़ पाते। दादा

और पोती दोनों ही जैसलमेर की यात्रा के बारे में पत्र लिखते हैं। यानी, यदि आप जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर या कहीं और नहीं गए हैं तो पत्र नहीं लिखा जा सकता। संभवतः यह पत्र यह संदेश भी देगा कि पत्र इसी तरह की चीजों पर लिखे जाते हैं। रोजमर्रा या घर-परिवार के हालचाल या अपने मन की बात पत्र का विषय नहीं हो सकते। शायद ही कोई बच्ची इस पत्र को देखकर इससे किसी तरह का भावनात्मक रिश्ता बना पाए और पत्र लिखने के लिए तैयार हो पाए। वैसे पाठ्यपुस्तक में बच्ची से पत्र लिखने की अपेक्षा भी नहीं की गई है। यहां भी पाठ्यपुस्तक निर्माताओं की कल्पनाशीलता और श्रम जवाब देता नजर आता है। बेहतर होता कुछ पत्रों के संकलन से पत्र छांटकर दिए जाते।

सामाजिक संदर्भ एवं चतुर अनुमान

कोई भी बच्ची जब पढ़ना सीखती है तो सही तरह से पढ़ना सीखने में दो बातें जरूरी लगती हैं। एक, संदर्भ की स्पष्टता और दूसरी, पढ़ने में अनुमान लगा पाने की क्षमता। संदर्भ जितना स्पष्ट होगा अर्थ उतना ही स्पष्टता से बनने की संभावनाएं हैं। पाठ्यपुस्तक में कहा गया है, ''...संदर्भ से सीखने की शुरुआत की गई है। संदर्भ से वाक्य, वाक्य से शब्द और शब्द से वर्ण/ध्वनि तथा फिर इसी क्रम में वापस वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य, वाक्य से संदर्भ तक पहुंचने की प्रक्रिया अपनाई गई है।'' (कक्षा 1, पृ. iv) पाठ्यपुस्तक इस स्वीकार्य सिद्धान्त को चरितार्थ नहीं कर सकी है। कक्षा एक की पाठ्यपुस्तक के पाठ नौ में (लगभग आधी पुस्तक पूरी होने के बाद) यह संदर्भ है, ''मामा आए। मोटर लाए। हाथ लगाकर मोटर देखी। खड़ड़-खड़ड़ कर मोटर भागी। पीछे-पीछे माली भागा।'' (कक्षा 1, पृ. 60)। यह एक मध्यमवर्गीय संदर्भ है। कौनसी बच्ची इस तरह की भाषा का उपयोग करती होगी? सवाल यह भी उठता है कि क्या इस तरह के संदर्भ भाषा शिक्षण की दृष्टि से उपयोगी संदर्भ हैं? इन पाठ्यपुस्तकों को देखकर लगता है कि यहां संदर्भ का अर्थ है किसी भी तरह की इबारत का होना, चाहे उस इबारत से बच्ची के मन में कोई अर्थ बने या न बने, वह उसकी जिन्दगी से जुड़े या न जुड़े। कक्षा 1 की पाठ्यपुस्तक में पाठ 13 (बच्ची लगभग 70 प्रतिशत समय स्कूल में व्यतीत कर चुकी है) में बच्ची से इस उदाहरण के साथ वाक्य बनाने की अपेक्षा की गई है, 'लीला फल लाओ।' (कक्षा 1, पृ. 84) इस उदाहरण से पहले चार शब्द दिए गए हैं जिनसे यह वाक्य बन सकते हैं, ''लीला फल लाओ। लीला फल खाओ। लाली फल लाओ। लाली फल खाओ।'' यह वाक्य बच्ची में पढ़ने-लिखने के प्रति न तो कोई जिज्ञासा जगा पाएंगे और न ही उसे सीखने की उपलब्धि का अहसास करा पाएंगे। यहां सवाल पाठ्यपुस्तक निर्माताओं की समझ पर भी उठता है कि आखिर वे संदर्भ से सीखने का अर्थ क्या समझते हैं? क्या इसका मतलब शब्दशः पढ़ना है या संदर्भ में पढ़ना है, जहां बच्ची कुछ शब्द बिना अक्षर पहचाने भी पढ़ सकती है। अर्थात् जिसे अंदाज या अनुमान से पढ़ना कहते हैं और भाषा में यह बहुत महत्त्वपूर्ण कौशल होता है, जिसे यह पाठ्यपुस्तकें नजरअंदाज करती हैं। पाठ्यपुस्तक में यह लिखा तो गया है कि छह वर्ष की बच्ची अपनी भाषा की विशेषज्ञ होती है परन्तु इनमें उस विशेषज्ञ बच्ची के लिए ऐसी गतिविधियां विकसित नहीं की गई हैं जिससे कि वह मातृभाषा से रिश्ता जोड़ते हुए अपने अनुभवों के माध्यम से अपने-आपको व्यक्त कर सके जो कि उसके आत्मविश्वास को बढ़ाने के साथ सीखने में उसकी उत्सुकता बढ़ाए। पाठ्यपुस्तक के 'आमुख' में बच्चे के सामाजिक संदर्भ और उसकी भाषा को सीखने का महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है। परन्तु यह पाठ्यपुस्तकें न तो कोई सार्थक संदर्भ ही निर्मित कर पाई हैं और न ही अनुमान से पढ़ने की क्षमता का उपयोग।

पूर्वाग्रह युक्त छवियां

शिक्षा का काम होना चाहिए प्रचलित ज्ञान, परंपराओं, मूल्यों और विश्वासों आदि के बारे में सोचना सिखाना यानी अपने निर्णय सोच समझकर लेना सिखाना। अतः शिक्षा को मतारोपण की अपेक्षा इस बात के अवसर प्रदान करने चाहिएं कि बच्ची समाज में सीखी गई चीजों के बारे में विचार करके अपना मत बना सके, न कि परंपराओं के नाम पर उन्हें मानना शुरू कर दे। परन्तु यह पाठ्यपुस्तकें बड़ी ही चतुराई से ऐसी सामग्री का चयन करती हैं जो मान्यताओं,

परंपराओं के नाम पर दबे पांव मतारोपण करती हैं। ''एक बार सेठ की हवेली में चोरों ने सेंध लगाई। ...सेठ को शक था उस चोरी में हो न हो उसके नौकरों का हाथ है'' (कक्षा 3, पृ. 54)। हमारे समाज में यह आम धारणा है कि चोरी गरीब लोग करते हैं। घर में भी सबसे पहले घर के नौकरों पर ही शक की सुई घूमती है और पुलिस भी समुदाय के सबसे कमजोर तबके पर ही शक करती है। यह कहानी इस प्रचलित मान्यता को ही स्थापित कर रही है। या ''...नानाजी ने और कुछ नहीं कहा। वे बाहर चले गए। मैं समझ गया कि मुझको गिलहरी को रखने की अनुमति मिल गई। अब नानी भी कुछ नहीं कहेंगी।'' (कक्षा 3, पृ. 115) पाठ्यपुस्तक के यह दोनों ही उदाहरण पूर्वाग्रह को ही पोषित करते हैं। एक में अमीरों का गरीबों के प्रति पूर्वाग्रह है तो दूसरे में जेण्डर का। पाठ्यपुस्तक में कई जगह महिलाओं की परंपरागत छवि को ही पोषित किया गया है, जैसे ''देह साजी भली, बहू लाजी भली। लूवां बाजी भली, नौबत गाजी भली। गाय दूध भली, गवर पूजी भली। जोबन जोड़ी भली, कच्छी घोड़ी भली।'' (कक्षा 5, पृ. 22), ''गायां चरावती गोरबन्द गूंथियो, तो भैंस्यां ने ...म्हारो गोरबन्द नखराळो आलिजा... ।'' (कक्षा 5, पृ. 38) पाठ्यपुस्तक में वे घटनाएं भी सवालों के दायरे से परे हैं जो हमारी उसी संस्कृति को पोषित करती हैं जिसमें पत्नी अपने पति के नाम की अपेक्षा उसे चुन्नी/बिट्टू के पापा या फिर आप कहकर ही संबोधित करती हैं।

आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र

पाठ्यपुस्तक के आमुख में कहा गया है कि, ''पाठ्यपुस्तक में राजस्थान और भारत की विविधता भरी संस्कृति, हमारे संवैधानिक मूल्यों के साथ जेण्डर, धर्म, जाति, भाषायी विविधता, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों आदि के प्रति संवेदनशीलता रखते हुए समावेशी शिक्षा के विचार को समाहित करने का प्रयास किया है।'' पाठ्यपुस्तकों को बारीकी से देखने के बाद पाठ्यपुस्तक निर्माताओं की संवेदनशीलता के अर्थ को समझना मुश्किल है। एक बात जो समझ में आती है वह यह कि पाठ्यपुस्तक निर्माता जाति, धर्म और जेण्डर आदि के संबंध में उन सभी सवालों को उठाने से बचे हैं जो हमारे यथार्थ को समझने या यथास्थिति को चुनौति देने वाले हैं।

किसी भी पाठ्यपुस्तक में जेण्डर, धर्म एवं जाति आदि के प्रति संवेदनशीलता का आशय सिर्फ यह नहीं होता कि महिला या बालिकाओं को पात्र के तौर पर रख दिया जाए या उनके चित्र दे दिए जाएं। सही मायने में संवेदनशीलता उन स्थितियों को पाठ्यपुस्तक में विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत करना होता है जो यथास्थिति को बनाए हुए हैं और उन्हें सवालों के दायरे में लाना। शायद इन मुद्दों को पाठ्यपुस्तक में स्थान देना और विचार विमर्श के दायरे में लाना ही पाठ्यपुस्तक निर्माताओं की संवेदनशीलता का परिचायक हो सकता है। एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें इसके लिए बेहतर उदाहरण पेश करती हैं लेकिन राजस्थान के पाठ्यपुस्तक निर्माता इन उदाहरणों से सीखने से भी बचे हैं। ऐसा लगता है, संभवतः उनकी राजनैतिक चेतना यथास्थिति के प्रति बैचेनी ही महसूस नहीं करती।

इससे उलट कुछ इस तरह की कहानियां भी हैं जो कि धार्मिक पूर्वाग्रहों और ऐतिहासिक तथ्यों के बीच के फर्क को धूमिल करती दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिए, ''सोचा, चलकर भगवान ब्रह्माजी से रंग मांगा जाए। सारे पक्षी एकत्र होकर ब्रह्माजी के पास पहुंचे।'' (कक्षा 3, पृ. 91) इन पाठों की प्रस्तुति दंत कथाओं की अपेक्षा सत्य घटनाओं की तरह की गई है जो बच्ची को गहरी धार्मिक आस्थाओं की ही मजबूत करेगी। पाठ्यपुस्तकों में प्रार्थना आदि से बचा गया है लेकिन एक चित्र में प्रार्थना का मोह प्रकट हो ही गया है। कक्षा एक, पृष्ठ 38 पर बने चित्र में बच्चे आंखें बंद किए दोनों हाथों को जोड़े प्रार्थना की मुद्रा में बैठे दिखाए गए हैं। यह पाठ्यपुस्तक निर्माताओं के सामाजिक अनुकूलन की ग्रन्थि है जो अनायास प्रकट होती है।

देश के प्रति सम्मान का भाव अच्छी बात है परन्तु अंध भक्ति पैदा करना एक भिन्न बात है। पाठ्यपुस्तकों में ऐसी सामग्री का अभाव है जो सामाजिक, राजनैतिक अथवा आर्थिक यथार्थ पर आलोचनात्मक चिंतन का अवसर देती हो।

चयनित सामग्री या तो हमारे सामाजिक यथार्थ पर विचार विमर्श से बचती है या उसे महिमामंडित करती है। जैसे, "यमुना लहराती है सुंदर, ...खेतों में हरियाली है। ...मत भूलो तुमने अन्न कहां का खाया है।'' (कक्षा 3, पृ. 77), ''रण भेरी रुक-रुक बजती थी, वीरों की भुजा फड़कती थी। संकेत मिला ज्यों राणा का, चेतक बिजली का टूट पड़ा।'' (कक्षा 5, पृ. 83)। यमुना के प्रदूषण से लोग परेशान हैं और किसान आत्महत्या कर रहे हैं। क्या पाठ्यपुस्तक निर्माताओं को अकाल, गरीबी और भुखमरी पर चर्चा नहीं करनी चाहिए? पाठ्यपुस्तक में कहा है कि मंहगी चीजें मतलब गुणवत्ता। क्या गुणवत्ता के लिए मंहगा होना अनिवार्य शर्त है, आदि सवालों पर सोचने का अवसर यह पाठ्यपुस्तकें सृजित नहीं कर पाई हैं, "शंकर ने जो छाता खरीदा, वह महंगा था; परन्तु अधिक समय तक चला। राधे का छाता सस्ता था और एक बारिश भी नहीं झेल पाया। इस पर अम्मा ने कहा - महंगा रोये एक बार, सस्ता रोये बार-बार।'' (कक्षा 5, पृ. 101)। क्या इस मुहावरे को सिखाने के लिए यही कहानी बची थी। क्या इस उदाहरण में बाजार की सत्ता या मानसिकता को स्थापित करने की कोशिश नहीं है।

इंतजार बाकी है

अब तक हुई सारी बात को समेकित करें तो ऐसा लगता है कि पाठ्यपुस्तक जिन उम्मीदों को अपने आमुख में जगाती है उनको पूरा करने में सफल नहीं हो सकी है। कक्षा में बहुभाषिकता का सवाल हो या फिर मातृभाषा और स्कूली भाषा के बीच रिश्ता बनाने की बात हो, इन सबके लिए न तो ऐसी कोई गतिविधि है जो बच्चों की रचनात्मकता को उभार सके, न ही बच्ची को अपनी भाषा में अपने-आपको व्यक्त करने के अवसर हैं। उच्च स्तरीय भाषायी कौशलों का विकास तो बहुत दूर की बात है। तमाम कोशिशों के बावजूद रचनाओं के चयन में ऐसे पूर्वाग्रह हैं जो सामाजिक यथास्थिति को ही पुनरूत्पादित करते हैं, सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों को कक्षा में लाना तो बहुत दूर का मामला है। प्रो. यशपाल समिति ने 1992 में अपनी संस्तुति में कहा था कि, ''भाषा की पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय एवं बोलचाल के मुहावरे को उचित स्थान दिया जाए। भावी पाठ्यपुस्तकों में बच्चों की जीवन अनुभूतियों, काल्पनिक कहानियों, कविताओं तथा देश के विभिन्न भागों के सामान्य जन-जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाली कहानियों को यथेष्ट रूप में निरूपित किया जाए। पांडित्यपूर्ण तथा कठिन और बोझिल भाषा का प्रयोग न किया जाए।'' परन्तु यह पाठ्यपुस्तकें न तो बच्ची के जीवन की अनुभूतियों को कक्षा का हिस्सा बनाती हैं और न ही सामान्य जन-जीवन की प्रस्तुति हेतु उपयुक्त रचनाओं का चयन कर पाती हैं। हिन्दी की बेहतर पाठ्यपुस्तकें बनाने का एक अवसर फिर हाथ से निकल गया है। राजस्थान के बच्चों को फिर से स्तरहीन एवं गुणवत्ताहीन पाठ्यपुस्तकों के साथ बिताना होगा। ◆

(इस आलेख को बेहतर बनाने में कुलदीप, योगेन्द्र, प्रियंका एवं वन्दना के सुझावों से मदद मिली है।)

(शिक्षा बिना बोझ के, अनुवाद-राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् दिल्ली, पृ. 32)